श्रीगणेशायनमः ॥

दयानन्द की बुद्धि.

मुरादाबाद निवासी

ला० जगन्नाथदास सङ्कलित

मिलनेका पता—

मैनेजर ब्रह्मप्रेस इटावा.

प्रथमवार १००० } संवत् १९७१ { मूल्य)॥। २॥) में १००

पं० ब्रह्मदेव मिश्र शास्त्रीके प्रबन्धसे

ब्रह्मप्रेस इटावामें मुद्रित

॥ ओ३म् ॥

॥ परमात्मा जयति ॥

दयानन्दकी बुद्धि ।

एक समाजी महाशय अपनी बुद्धि की भ्रान्ति से अथवा द्वेषाग्निकी प्रेरणासे "उलटा चोर कोतवाल को डाटे" इस कहावत के अनुसार हमको भ्रान्तबुद्धि बतलाते हैं अपने गुरुका दोष हम पर लगाते हैं। उन्होंने सभ्यताके विरुद्ध सर्वथा अशुद्ध हमको यह लिखा है कि "अपनी बुद्धिकी भ्रान्तिसे अथवा द्वेषाग्नि की प्रेरणासे कुछेक दिनों से आँय बाँय शाँय बकने लगा है" हमने उनके गुरुकी बुद्धिकी भ्रान्ति स्वधर्म रक्षार्थ विस्तारपूर्वक जगत्को दिखाई है और अपने सत्य लेखसे मिथ्यावादियों पर सम्यक् विजय पाई है, अब उक्त महाशयकी प्रेरणासे पुनः उनकी बुद्धिकी भ्रान्ति और द्वेषाग्निका नमूना दिखाता हूं और अज्ञोंको उनके जालसे बचाता हूं। नहीं २ उक्त महाशयने एक समस्या दी है और हम ने उसकी सम्यक् पूर्त्ति की है इसको महेशजीका प्रसाद जानिये, और दयानन्दका गुणानुवाद मानिये देखिये दयानन्दकृत ग्रन्थोंमें प्रायः वेदादि सच्छास्त्र विरुद्ध महा अशुद्ध सर्वथा मिथ्या और असम्बद्धादि लेख भरे पड़े हैं। इससे प्रतीत होता है कि उसने अपनी बुद्धि की भ्रान्तिसे अथवा द्वेषाग्निकी प्रेरणासे जो कुछ मुखमें आया

सो ऑयं वॉय ग्रॉय वकदिया और जो चाहा सो लिख दिया। देखो दलपतराय संकलित दयानन्दजीवनचरित्र पृष्ठ ५८। ५९ तथा ६० में उसका कथन है कि "खोटी प्रारब्धसे इस जगह मुझे एक वड़ा दोष लगगया अर्थात् मुझको भंग पीनेकी आदत होगई किसी २ समय उसके कारण मैं सर्वथा वेहोश हो जाया करता था वहां जब मैं भंगके नशेसे मदहोश और वेहोश होकर वैठा हुआ था प्रातःकाल एक स्त्रीने मुझे दही दिया मैंने खा लिया दही वहुत खट्टा था इसलिये भंगका नशा उतारने को एक अच्छी औषधि होगई, पाठक गण ! विचार कीजिये कि पहिले दिन भंग पी और दूसरे दिन दही खाने से नशा उतरा ऐसे भंगड़की बुद्धि भ्रांत होनेमें क्या सन्देह है ? वह आप कहता है कि 'मैं भंगके नशे में वहुधा वेहोश होजाया करता था, इससे भी स्पष्ट सिद्ध है कि उसने अपनी बुद्धिको भ्रान्तिसे और क्रोधाग्निकी प्रेरणा से जो कुछ मुखमें आया सो ऑय वॉय ग्रॉय वकदिया और जो चाहा सो लिखदिया। उक्त जीवनचरित्र के पृष्ठ २७ में दयानन्दका कथन है कि 'मुझे पूरा २ निश्चय हो गया कि ब्रह्म मैं ही हूं, इससे अधिक बुद्धि की भ्रान्ति और क्या होगी और ऐसे अज्ञानीको शान्ति क्या। पृष्ठ ३७ तथा ३८ से प्रकट है कि उसने जिन पुरुषोंको अपनी आंखोंसे गोवध करते और गोमांस खाते देखा: उन्हीं

से सीधा आदि लेकर अपने ब्रह्मचारीसे भोजन बनवाया और खाया। कहिये यह बुद्धि की भ्रान्ति का काम है वा अज्ञताका परिणाम। पृष्ठ ६४ तथा ६५ में आपका वर्णन है कि 'मैं एक भयानक जगह में घुसगया और एक वृक्षके नीचे पड़रहा वहां दो पहाड़ी अपने एकसरदार सहित मुझको अपनी झोंपड़ियोंमें बुलानेके लिये आये परन्तु मैंने उनका भोजनादि सत्कार स्वीकार न किया क्योंकि वे सब मूर्त्तिपूजक थे,, धन्य जिसको अपनी आंखोंसे गोवध करते और गोमांस खाते देखा उस से सीधा आदि लेकर भोजन करना तो स्वीकार किया और मूर्त्तिपूजकों के सत्कारका तिरस्कार, ये बुद्धि की भ्रान्तिका अन्धकार है वा द्वेषाग्निकी प्रेरणाका चमत्कार। यह भी ध्यान रहै कि स्वामी जी मूर्त्तिपूजकोंही के रजवीर्य से प्रकट हुए मूर्त्तिपूजकों ही के अन्नसे उन का शरीर बढ़ा जबतक सब जगह समाज स्थापित नहीं हुए मूर्त्तिपूजकोंके अतिरिक्त किसके भोजनादि सत्कार से पालन पोषण हुआ। वास्तव में तो यह है कि समाजोंके स्थापित होने पर भी मूर्त्तिपूजकोंके धन और अन्नादि का त्याग नहीं किया। मूर्त्तिपूजक महाराजा और धनी धर्मात्माओंसे प्रत्यक्ष ही धन लिया जिसको आप ने प्रशंसापत्र समझ कर अपने यजुर्वेदभाष्य अङ्क ४८। ४९ के टाइटिलपेज पर छपवाया उस की आदि में "श्रीमदेकलिङ्गेश्वरो जयति" और स्वस्तिश्री छपा है

छः महीने महाराणाका अन्न घृत नैवेद्यादि पदार्थ खाया और चलतीवार दो सहस्र रुपया गांठ बंधाया। राजस्थानमें मूर्त्ति खण्डनका नाम न लिया धनके लोभसे स्वमतको सर्वथा ही त्याग दिया कहिये ये उनकी बुद्धि की भ्रान्तिही का फल था वा राजभय और धनतृष्णा का प्रबल बल। पृष्ठ ४६ पर दयानन्द का कथन है कि "मुझ को एक लाश (मुरदा) दरियाके ऊपर बहती हुई मिली मैं उसको पकड़कर किनारे पर ले आया तब मैंने उसको एक तेज़ चाकूसे काटना प्रारम्भ किया मैंने दिल को उसमेंसे निकाला और दिलको नाभि से पसली तक काटा इसी तरह शिर और गरदन के एक भाग को भी काटकर अपने सामने रख लिया इति,, भला ये द्विजातियों और संन्यासियोंका धर्म है वा नीचों का कर्म। निःसन्देह उनसे बुद्धि की भ्रान्ति ने यह अनुचित कर्म कराया और संन्यासको धब्बा लगाया वा झूंठ बुलवाया और मिथ्यावादी बनाया। पृष्ठ ४९ में है कि "जब मैं भंगके नशेमें मदहोश और बेहोश होकर बैठा हुआ था और घोर निद्रामें सोता था तो मैंने स्वप्नमें महादेव और पार्वती को देखा पार्वती महादेव जी से कह रही थीं कि दयानन्द का विवाह हो जावे तो अच्छा है परन्तु महादेवने इसके विरुद्ध कहा और मेरी भंग की तरफ इशारा किया अर्थात् भंग का जिक्र छेड़ा जब मैं जागा तो मुझे बड़ा दुःख और क्लेश हुआ इति"।

यहां उनकी बुद्धिकी भ्रान्तिका वारापार नहीं है और कलियुगाचार्य को सत्यासत्य तथा धर्माधर्म का विचार नहीं यह सारी भंगकी तरंगें हैं । और विषयासक्तिकी उमंगें । बुद्धिकी भ्रान्तिका विनाश है और भंगके नशेमें प्रलाप, घोरनिद्रा सुषुप्तिका नाम है । यहां स्वप्नका क्या काम है विवाहका उत्साह मनमें बसा था संन्यासीका चित्त अनुचित कर्मनें फंसा था महादेवजीने उसके गहा भंगड़ी होनेपर संकेत किया और संन्यासीके विवाहका निषेध करदिया तब उस को महादुःख और महाक्लेश हुआ प्रतिकूल महेश हुआ ॥ शेर क्यों नहो दुःख और क्लेश भला, जिसका होते विवाह रुकजाये ॥

सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८७५ के पृष्ठ ४५ में मांसादि पदार्थोंसे होम करना लिखा है । पृष्ठ १४९ मांसके पिण्ड देनेमें कुछ पाप नहीं। पृष्ठ १४८ गाय को गधीके समान लिखा उसको घास जल भी दुग्धादि प्रयोजन के वास्ते देने अन्यथा नहीं । पृष्ठ १७१ यज्ञ के वास्ते जो पशुओंकी हिंसा है सो विधिपूर्वक हनन है । पृष्ठ ३०२ कोई भी मांस न खाय तो जानवर पक्षी मत्स्य और जलजन्तु जितने हैं उन से शतसहस्रगुने हो जांय फिर मनुष्योंको मारने लगें और खेतों में धान्य ही न होने पावे फिर सब मनुष्यों की आजीविका नष्ट होनेसे सब मनुष्य नष्ट होजांय । पृष्ठ ३०३ जहां २ गोमेधादिक लिखे हैं वहां २ पशुओंमें नरोंका मारना लिखा है और एक

थैलसे हजारहां गैयां गर्भवती होती हैं इससे हानि भी नहीं होती और जो वंध्या गाय होती है उनको भी गोमेधमें मारना क्योंकि वंध्यागायसे दुग्ध और वत्सादिकोंकी उत्पत्ति नहीं होती। पृष्ठ ३९९—पशुओंको मारनेमें थोड़ा सा दुःख होता है परन्तु यज्ञमें चराचरका अत्यन्त उपकार होता है इति। पाठकगण! ऐसा शास्त्रविरुद्ध अधर्म युक्त लेख करना दयानन्दकी भ्रान्तबुद्धि ही का परिणाम है अथवा द्वेषाग्निकी प्रेरणाका काम। संस्कारविधि मुद्रित संवत् १९३२ का पृष्ठ ११ जो चाहे कि मेरा पुत्र पंडित सदसद्विवेकी शत्रुओंको जीतने वाला स्वयं जीतनेमें न आने वाला युद्धमें गमन हर्ष और निर्भयता करने वाला शिक्षितवाणी का बोलने वाला सब वेद वेदांग विद्याका पढ़ने और पढ़ाने तथा सर्वायु का भोगने वाला पुत्र होय वह मांसयुक्त भातको पकाके पूर्वोक्त घृतयुक्त खाय। पृष्ठ ४१ अजाके मांसका भोजन अन्नादिकी इच्छा करनेवाला तथा विद्या कामनाके लिये तित्तिरिका मांस भोजन करावे इति। बुद्धिकी भ्रान्तिने यहांतक तो भमाया है कि उनसे मांस भोजन का उपदेश कराया है। कहीं २ शिष्योंके लिये अद्भुत प्रयोग बताया है जिसका फल अपने लेखमें सम्यक् दर्शाया है। पृष्ठ ४१ गर्भधारणसे चतुर्थ महीने में निष्क्रमण संस्कार करे किंवा इसके पूर्व भी यथायोग्य देखै तो करै बालक

को वस्त्र पहिराके शुद्ध देशमें फिरावे इति, यहां बुद्धिकी भ्रांतिने स्वामीजीको कैसा नचाया है जिसकी प्रेरणासे उन्होंने गर्भमें स्थित बालकको वस्त्र पहिराके शुद्धदेश में फिराना महा असंभव गीत गाया है। पृष्ठ १४१ मृतकके शरीर प्रमाणसे बराबर घी कर्पूर चन्दनादि सुगंध साथ लेले न्यूनसे न्यून बीससेर घी अवश्य होना चाहिये इतना भी घृतादि न होय तो न गाड़ै न जलमें छोड़ै और न दाह करै किन्तु दूर जाके जंगलमें छोड़ आवे इति, कहिये यह बुद्धिकी भ्रान्तिकी लीला है वा वेदकी आज्ञा, जंगलमें मुरदे डाले जायगे तो जगत्का उपकार होगा वा संहार, कुछ हो बाबा वाक्य प्रमाण है गुरुकी आज्ञा माननेहीमें शिष्योंका कल्याण है। पृष्ठ १५० मृतकके भस्म और अस्थिको भूमिमें गाड़देवे अथवा बाग वा खेतमें डालदेवे इति, यहां तो बुद्धिकी भ्रान्ति ने खूब धूल उड़वाई गुरुजीने शिष्योंको मृत पुरुषोंकी भस्म अस्थिको बाग और खेतमें डालनेकी अच्छी विधि सुनाई। ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ २१४ विवाहित पतिके मरने वा रोगी होनेसे दूसरे पुरुष वा स्त्रीके साथ सन्तानोंके अभावमें नियोग करे तथा दूसरेकेभी मरण वा रोगी होनेके अनन्तर तीसरेके साथ करले इसी प्रकार दश तक करनेकी आज्ञा है पुरुषके लिये भी विवाहित स्त्री के मरजाने पर विधवा के साथ नियोग करने की आज्ञा है और जब वह भी रोगी हो वा मरजाय तो

सन्तानोत्पत्ति के लिये दशम स्त्री पर्यन्त नियोग कर लेवे। सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४ पृष्ठ ११८ [इमां त्वमिन्द्र०] इस मन्त्रमें ग्यारहवें पुरुष तक स्त्री नियोग कर सकती है वैसे पुरुष भी ग्यारहवीं स्त्री तक नियोग कर सकता है, जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे सुभगे सौभाग्य की इच्छा करनेहारी स्त्री! तू मुझसे दूसरे पति की इच्छा कर, क्योंकि अब मुझसे सन्तानोत्पत्ति की आशा मत करे। पृष्ठ ११९ विवाहिता स्त्रीका विवाहित पति धर्म को परदेश गया हो तो आठ वर्ष विद्या और कीर्ति के लिये गया होतो छः और धनादि कामना के लिये गया हो तो तीन वर्षतक बाट देखके पश्चात् वह नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर ले जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जावे। जो पुरुष अत्यन्त दुःखदायक हो तो स्त्रीको उचित है कि उसको छोड़के दूसरे पति से नियोग कर सन्तानोत्पत्ति करके उसी विवाहित पति के दायभागी सन्तानोत्पत्ति करलेवै—पृष्ठ १२० गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष वा स्त्रीसे न रहाजाय तो किसी से नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति करदे इत्यादि कहिये स्वामीजी ने बुद्धि की भ्रान्तिकी प्रेरणासे अथवा अपनी स्वाभाविक अज्ञतासे यह कैसा शास्त्रविरुद्ध महा

अशुद्ध सर्वथा अयुक्त और असमञ्जस लेख किया है कि जिसने लज्जाको भी लज्जित कर दिया है। अधर्मको धर्म बताया है अज्ञोंको कुमार्ग में चलाया है। परस्त्री और परपुरुष संगम ही का नाम व्यभिचार है। आर्योद्देश रत्नमालाके पृष्ठ २२ में स्वामीजीका भी यही सुविचार है बुद्धि की भ्रांतिसे आँय बाँय शाँय बकना इसीका नाम है जो कि सम्पूर्ण सज्जनोंकी दृष्टिमें बुराकाम है। उक्त सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ८८ जो मुखादि अंगोंसे ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उपादान कारणके सदृश ब्राह्मणादिकी आकृति अवश्य होती जैसे मुखका आकार गोलमोल है वैसेही उनके शरीरका भी गोलमोल मुखाकृतिके समान होना चाहिये इत्यादि। यहां बुद्धि की भ्रान्ति प्रत्यक्ष हैं यज्ञों में महायज्ञ का नाम दक्ष है उत्पत्ति स्थान उपादान नहीं होता जिस अंग से जो उत्पन्न होता है वह उस अंग के समान नहीं होता। पृष्ठ ८९ प्रश्न जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जाय तो उसके मा बाप की सेवा कौन करेगा। उत्तर—उनको अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्णके योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राजसभाकी व्यवस्थासे मिलेंगे इत्यादि। जिस दिन आर्योंमें इसका प्रचार होगा जगत्में हाहाकार होगा ऐसा असमञ्जस लिखना बुद्धिकी भ्रान्ति ही का प्रताप है अथवा

किसी देवता का शाप है । पृष्ठ ६७ उत्तम स्त्री सब देश तथा सब मनुष्योंसे ग्रहण करे इति, इस आज्ञासे सम्यक् विदित है कि मुसलमान और ईसाई तो क्या चमार भंगी तक की कन्या भी, दयानन्द के मत में विहित है। बुद्धि की भ्रान्ति ने स्वामीजीका सारा ज्ञान हर लिया उसीकी प्रेरणासे उन्होंने शिष्यों को सब देश तथा सब मनुष्योंसे उत्तम स्त्री ग्रहण करने का उपदेश कर दिया। पृष्ठ ११८ जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देशमें जाकर आसन लगा प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक मनको नाभि प्रदेश में वा हृदय कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठके मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्माका विवेचन करके परमात्मामें मग्न होकर संयमी होवे इति स्वामीजीकी बुद्धि की भ्रान्ति अति प्रबल है उसीका यह विषरूप फल है कि जिसने पाषाणमय मूर्त्ति की पूजा तो छुड़वाई और पीठके हाड़ में ईश्वर की उपासना कराई धन्य ? पृष्ठ १९४ ईश्वरको त्रिकालदर्शी कहना मूर्खताका काम है इति । ईश्वरको त्रिकालदर्शी न मानना बुद्धि की भ्रान्ति का काम है वा नास्तिकता का परिणाम । स्वामीजीने आर्याभिविनयके पृष्ठ ७६ में स्वयं ईश्वरको त्रिकालदर्शी लिखा है परस्पर विरुद्ध दो लेखोंमें अवश्य एक जगह उनकी मूर्खता है । पृष्ठ २०८ (प्रश्न) अनादि किसको कहते और कितने पदार्थ अ-

नादि है इति, महा बुद्धिकी भ्रान्तिने स्वामीजीको ऐसा अन्ध बनाया कि प्रथम प्रश्नका उत्तर लिखने होमें न आया। पृष्ठ २४१ मुक्तिमें जाना वहांसे पुनः आना ही अच्छा है क्या थोड़ेसे कारागारसे जन्म कारागार दण्डवाले प्राणी अथवा फांसीको कोई अच्छा मानता है? जब वहां से आना हो न हो तो जन्म कारागारसे इतना ही अन्तर है कि वहां मजूरी नहीं करनी पड़ती इति, जिसने मुक्ति को कारागार और फाँसी के समान माना है और बंधनमें आना ही उत्तम जाना है उसकी बुद्धिके भ्रान्त होनेमें किसी को संशय नहीं है और उसको नास्तिकों का शिरोमणि कहने में भय नहीं। पृष्ठ २४१ जब तक ३६००२० (तीनलाख साठ सहस्र) वार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है उतने समय पर्यन्त जीवों को मुक्तिके आनन्दमें रहना इति, यह स्वामीजीने सौ वर्षके दिन फेलाये हैं और अंक तथा अक्षरोंमें छपवाये हैं महा अशुद्धि की है बुद्धि की भ्रान्ति एकको दस बतला रही है तीनलाख साठसहस्र अक्षरों में लिखे हैं, अतएव यंत्रालयकी अशुद्धि न कहिये झूठ की शरण न गहिये। पृष्ठ २८२ जो 'शीत प्रधान देश हो तो कामचार है चाहे जितने केश रक्खे और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिरमें बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और

उससे बुद्धि कम हो जाती है । डाढ़ी मूंछ रखने से भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट भी बालोंमें रह जाता है इति पृष्ठ २७९ और जो विद्या का चिन्ह यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़ मुसलमान ईसाइयोंके सदृश बन बैठना यह भी व्यर्थ है इति. आप ही शिखा के त्यागीको मुसलमान ईसाइयोंके सदृश कहना बुद्धि की भ्रान्तिका सम्यक् परिचय है और स्वामीजीने यज्ञोपवीत और शिखा का त्याग कर दिया था इससे उनका मुसलमान और ईसाइयोंके सदृश बन बैठना निश्चय है ।

पृष्ठ २६६ यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राणसे भी वियुक्त करदें उनका मांस चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियोंको खिला देवें वा जला देवें अथवा कोई माँसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है इति, स्वामीजीकी बुद्धि भ्रान्तिका भण्डार है और अज्ञताका आगार जो कि मांसाहारी मनुष्योंको हिंसादि पशुओं और मनुष्योंका मांस खानेवाला जानती है । क्योंजी ; वही बुद्धि ऋषिमुनियोंके ग्रन्थोंमें वेद विरुद्ध होनेका निर्णय करनेवालीहै वा सत्यासत्य और धर्माधर्म को कोई अन्य बुद्धि पहचानती है ?

पृष्ठ ३२ हिरण्याक्ष पृथ्वीको चटाईके समान लपेट सिरहाने धर सो गया, हिरण्यकश्यपने एक लोहे का

ग्रंथः छान्दमें तथाके रथसे कहा कि सौ कोस इत्यादि यान उपस्थ हो तो पहुंचने से न रहेगा महाराज पहुंचने के पूर्व नगरमें ठंढा हुई जाने से अर्जुन का नहीं : नारायण ने इस सन्धेपर छोटी छोटी चौटियोंकी पंक्ति बनाई। पृष्ठ ११४ रथेन वायुवेगेन नगरं गोकुलं प्रति कि अक्रूरजी कंसके भेजने से वायुके वेगके समान दौड़ने वाले घोड़ोंके रथपर बैठकर सूर्योदयसे चले और चार कोस गोकुलमें सूर्यास्त समय पहुंचे। पूतनाका शरीर छः कोस चौड़ा और बहुतसा लम्बा लिखा है। इत्यादि लेख बुद्धि की भ्रांतिहीके कारण स्वामीजीने भागवतके नामसे किया है अथवा कुवासनाकी प्रेरणासे लिखदिया है वस्तुतः भागवतमें उनके लेखानुकूल नहीं है और यह लिखने और शोधने तथा छापनेवालोंकी भूल नहीं म-हात्माजीकी भ्रान्त बुद्धि हीका प्रमाद है अथवा उ-नका जान बूझकर झूंठ लिखनेका स्वभाव। पृष्ठ ११६ जानश्रुति शूद्रने भी वेद "रैक मुनि" के पास पढ़ा था इति। जानश्रुतिको शूद्र कहनेवाला निःसन्देह भ्रान्त बुद्धि ही है क्योंकि वेदव्यास महर्षिने उत्तर मीं-मांसामें उनके क्षत्रिय होनेकी सम्यक् सिद्धिकी है। पृष्ठ १६२ जिस बातमें ये सहस्र एकमत हों वह वेदमत ग्राह्य है और जिसमें परस्पर विरोध हो वह कल्पित झूंठ अधर्म, अग्राह्य है इति, बाबाजीने भंग बहुत पी है उसीने उनकी बुद्धि सर्वथा भ्रान्तकी है। उसने और तो

जो कुछ शास्त्र विरुद्ध अन्यथा लेख कराया सो कराया परन्तु यह महाशोक है कि वेदोंको स्पष्ट कल्पित झूंठ अधर्म और अग्राह्य कराया।

पृष्ठ-५४६ जो दूसरे मतोंको कि जिनमें हजारों करोड़ों मनुष्य हों झूंठा बतलावे और अपने को सच्चा उससे परे झूंठा दूसरा कौन मत हो सकता है, इति, बुद्धिकी भ्रान्ति ने यह क्या ऊटपटाँग लिखवाया उसीके हाथसे उसका घर ढवाया सब मतोंको सच्चा ठहराया और अपने झूंठे मतको आप झूंठा बताया। शायद अपने किये से पछताया अतएव अन्तमें यह छपवाया कि जो दूसरे मतों को कि "जिनमें हजारों करोड़ों मनुष्य हों झूंठा बतलावे और अपने को सच्चा उससे परे झूंठा दूसरा मत कौन होसकता है" इस लेखसे स्वमतका झूंठा होना सम्यक् दर्शाया परन्तु बुद्धि की भ्रान्तिसे अथवा द्वेषाग्नि हठ दुराग्रह और पक्षपात की प्रेरणासे चेलोंकी समझमें उसका आशय फिर भी न आया या यूं कहिये कि कलियुग ने अपना प्रभाव दिखाया अज्ञोंको भरमाया धर्म को गिराया और अधर्म को फिर बढ़ाया।

पृष्ठ ५८८ अविद्वानों को असुर पापियोंको राक्षस अनाचारियों को पिशाच मानता हूं इति, आजकल जो कोई समाजमें चला जाता है वह आर्य ही कहाता है आर्योद्देश रत्नमालाके पृष्ठ ११ में जो आर्य का लक्षण छपा है वैसा तो कोई विरला है। प्रायः और हीं

प्रकारके दूषितमें आते हैं वे क्यों आर्य कहाते हैं ? समाजियोंको अपने गुरुके लेखानुसार इसका प्रबन्ध करना चाहिये जो जैसा हो उनका वैसा ही नाम धरना चाहिये वा स्वामी जी ने अपना मत बढ़ानेके हेतु अपने सम्पूर्ण चेलोंको आर्य उपाधिका पारितोषिक दिया है, और अपनी बुद्धिकी भ्रान्ति अथवा द्वेषाग्निकी प्रेरणा से स्वकृत आर्य लक्षण पर कुछ ध्यान नहीं किया, यह दयानन्दजीकी बुद्धि भ्रान्तिका नमूना राहेशजी का प्रसाद है जिससे सर्वत्र सूर्यवत् प्रकाशित उनकी अज्ञता और प्रमाद है दयानन्दजीके अज्ञानकी संक्षेपसे परीक्षा है और उनके अन्यथा लेखोंकी समीक्षा । जगन्नाथदास के सत्यवक्ता होनेका प्रमाण है, धर्मरक्षकों का धनुष्बाण, यदि हम पर मिथ्यादोषारोपण करने वाले महाशय के अन्तःकरण में हठ दुराग्रह और पक्षपात नहीं है और उनकी आंखोंके आगे अंधेरी रात नहीं तो हमारे लेख को देखकर दयानन्दजीको अवश्य भ्रान्त बुद्धि बतलायेंगे और सम्पूर्णको उनका भ्रान्त बुद्धि होना सम्यक् समझायेंगे । यदि अपनी बुद्धिकी भ्रान्ति अथवा द्वेषाग्नि की प्रेरणासे कुछ अँड बँड शँड झूठी बातें बनावेंगे. तो यथोचित उत्तर पायेंगे । जगत्को हंसायेंगे और अपनी अज्ञता पर पछतायेंगे ॥ इति ॥

काटने को मत दयानन्दी के है यह इन्द्रवज्र ।
धर्म के जो हों सहायक इस को रक्खें हाथ में ॥

इति